दैनिक जागरण

व्यक्ति को सृष्टि का नियामक बनने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए

चुनावी चंदे का हिसाब

चुनावी बांड का विवरण तो सार्वजनिक हो गया, लेकिन अभी यह पता नहीं चल पाया कि चुनावी चंदा देने के लिए जो बांड खरीदे गए, उन्हें किस राजनीतिक दल ने भुनाया। चुनावी बांड के जरिये विभिन्न दलों को मिले चंदे की रकम अभी और बढ़ेगी, क्योंकि एक वर्ष का आंकड़ा सामने आना शेष है। इस पर हैरानी नहीं कि चुनावी बांड के जरिये चंदा पाने वाले दलों में भाजपा सबसे आगे है। केंद्र के साथ अनेक राज्यों में सत्तारूढ़ होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक है, लेकिन यह एक पहेली सी है कि केवल एक राज्य में शासन करने वाली तृणमूल कांग्रेस तो चंदे की रकम के मामले में दूसरे स्थान पर है, लेकिन तीन राज्यों में सत्तारूढ़ कांग्रेस तीसरे स्थान पर। इसका कारण कुछ भी हो, लेकिन यह ठीक नहीं कि चुनावी बांड के जरिये भारी-भरकम चंदा देने वालों में कुछ ऐसी कंपनियां भी हैं, जिनका कामकाज सवालों के घेरे में रहा है और जो प्रवर्तन निदेशालय अथवा आयकर विभाग की जांच के दायरे में रही हैं। इन कंपनियों के चंदा देने के कारण विपक्षी दलों को यह कहने का मौका तो मिल गया कि केंद्रीय एजेंसियों का इस्तेमाल करके भाजपा ने चंदा हासिल किया, लेकिन क्या वे यह दावा कर सकने की स्थिति में हैं कि ऐसी किसी कंपनी से उन्हें चंदा नहीं मिला? संभवतः इस प्रश्न का उत्तर चुनावी बांड के विशिष्ट नंबर सार्वजनिक होने से मिलेगा। सुप्रीम कोर्ट ने स्टेट बैंक से पूछा है कि ये नंबर क्यों नहीं उपलब्ध कराए गए? स्टेट बैंक का जवाब जो भी हो, यदि ये नंबर उपलब्ध हो जाते हैं तो फिर चुनावी बांड का सारा कच्चा-चिट्ठा सामने आ जाएगा और यह पता चल जाएगा कि किसने किस राजनीतिक दल को कब कितना चंदा दिया?

चुनावी चंदे की प्रक्रिया पारदर्शी होने के साथ ऐसी होनी चाहिए, जिससे आम जनता को भी यह पता चल सके कि किसने किस दल को कितना चंदा दिया। वैसे तो चुनावी बांड की व्यवस्था चंदे की प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने के इरादे से ही निर्मित की गई थी, लेकिन ऐसा हो नहीं सका। इसी कारण सुप्रीम कोर्ट ने चुनावी बांड की व्यवस्था खत्म कर दी, लेकिन फिलहाल कोई नहीं जानता कि भविष्य में चुनावी चंदे का लेन-देन किस तरह होगा। यदि चुनावी चंदे की किसी समुचित प्रक्रिया का निर्माण नहीं होता तो फिर गोपनीय तरीके से चंदा देने का वह सिलसिला शुरू हो सकता है, जिसमें जनता को इस बारे में कुछ पता ही नहीं चलेगा कि किसने किसको कितना चंदा दिया? इससे भी खराब बात यह हो सकती है कि राजनीति काले धन पर आश्रित हो जाए। अब तो इसकी भी आशंका है कि राजनीतिक दल और साथ ही उन्हें चंदा देने वाले गोपनीय तौर-तरीके ही अपनाना पसंद करें। चुनावी बांड को लेकर आरोप-प्रत्यारोप के शोर में यह न भूला जाए तो अच्छा कि चुनावी चंदे की नीर-क्षीर प्रक्रिया का निर्माण आवश्यक है।

वेडिंग डेस्टिनेशन

प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण उत्तराखंड वेडिंग डेस्टिनेशन के लिए एक उपयुक्त स्थल है। देश-विदेश से लोग वहां विवाह और प्री वेडिंग फोटो शूट के लिए जा रहे हैं। अब जरूरत ऐसे स्थलों को चिह्नित कर वहां सुविधाएं विकसित करने की है, ताकि प्रदेश वेडिंग डेस्टिनेशन के रूप में अपनी पहचान स्थापित कर सके। वस्तुतः उत्तराखंड की पहचान अभी तक एक आध्यात्मिक एवं पर्यटन प्रदेश के रूप में रही है। बदरीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्री व गंगोत्री, यानी चारधाम के साथ ही यहां जागेश्वर धाम, बैजनाथ धाम, बागनाथ मंदिर, हेमकुंड साहिब, नानकमत्ता साहिब और पीरान कलियर जैसे धार्मिक स्थल हैं, जहां हर वर्ष लाखों की संख्या में धर्मावलंबी आते हैं। अब राज्य में बीते कुछ वर्षों में बदलाव देखने को मिल रहे हैं। इनमें एक प्रमुख बदलाव उत्तराखंड की पहचान वेडिंग डेस्टिनेशन के रूप में बनना है। देश-विदेश से लोग शिव-पार्वती के विवाह स्थल त्रियुगीनारायण, जोशीमठ, औली, ऋषिकेश, शांति कुंज, चकराता, हर्षिल, काणाताल, मसूरी, टिहरी झील, मुक्तेश्वर, भीमताल, नैनीताल, अल्मोड़ा व नौकुचियाताल जैसे स्थानों पर आ रहे हैं। इसलिए क्योंकि यहां का हर भूभाग बेहद खूबसूरत है और अपनी ओर आकर्षित करता है। विवाह जैसे अवसर को अविस्मरणीय अनुभव देने के लिए लोग यहां आ रहे हैं। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 'वेड इन इंडिया' का विचार दिया है। उन्होंने युवाओं से विदेश जाने के स्थान पर उत्तराखंड में डेस्टिनेशन वेडिंग करने का आह्वान भी किया। इसका असर अब नजर आ रहा है। अब आवश्यकता प्रधानमंत्री के इस विचार को मूर्त रूप देने के लिए वेडिंग डेस्टिनेशन के रूप में पहचान बना रहे स्थलों में विकास को गति देने की है। सरकार को चाहिए कि वह यहां आकर विवाह करने के लिए देश-विदेश के निवासियों को आकर्षित करे। इसके लिए कोई योजना बनाए। ऐसी सुविधा दे कि यहां आने वाले अपने विवाह को यादगार बना सकें। उत्तराखंड के वेडिंग डेस्टिनेशन बनने से निश्चित रूप से स्थानीय निवासियों की आर्थिकी भी सुदृढ़ होगी।

शिक्षा को सुगम बनाने की पहल

धर्मेंद्र प्रधान

शिक्षा क्षेत्र में प्राइमरों के माध्यम से ज्ञान की राह में भाषा संबंधी कठिनाई दूर करने के लिए किए गए उपाय क्रांतिकारी सिद्ध होंगे

अवधेश राजपूत

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत प्राचीन काल से ही विविधताओं वाला देश रहा है। सदियों से यहां विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग भाषाएं प्रचलित रही हैं। एक बहु-भाषी देश होने के नाते हमारे पास अनेक भाषाओं और बोलियों का विपुल भंडार है। अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषा का उपयोग होने के बावजूद यह हमें एक साथ बांधता है और एकजुट रखता है। बहुभाषी होने की यह विशेषता देश भर में ज्ञान के प्रसार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हमारी सरकार द्वारा पिछले दिनों लागू राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भी इस विचार पर काफी जोर दिया गया कि भारत की बहुभाषी प्रकृति हमारा एक बड़ा आधार है और राष्ट्र के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास के लिए इसके समुचित उपयोग की आवश्यकता है। इस नीति में हर स्तर पर बहुभाषावाद को बढ़ावा देने की सिफारिश की गई है, ताकि विद्यार्थियों को अपनी भाषा में अध्ययन का अवसर मिल सके। सभी भारतीय भाषाओं में शिक्षण सामग्री की उपलब्धता इस बहुभाषी संस्कृति को बढ़ावा देगी और यह 'विकसित भारत' के निर्माण में बेहतर योगदान दे सकेगी।

प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर ही विद्यार्थियों को स्थानीय और मातृभाषाओं में शिक्षण सामग्री और अध्ययन का अवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने यह प्रयास किया है। बच्चे अपनी भाषा में शुरुआती ज्ञान अर्जित करने के बाद स्कूली शिक्षा में अपने ज्ञान को उसी गति से विस्तार दे पाएं, इसके लिए स्थानीय भाषाओं के 52 प्राइमर तैयार किए गए हैं। स्थानीय भाषाओं में पठन सामग्री के रूप में तैयार इन प्राइमरों का उद्देश्य बच्चों को न केवल पढ़ने और लिखने में भाषा की दक्षता प्रदान करना है, बल्कि उनमें रचनात्मकता और आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देना भी है। अभी 17 राज्यों की 52 स्थानीय भाषाओं में ये प्राइमर तैयार हुए हैं। इनमें आदिवासियों एवं जनजातियों को ध्यान में रखकर उनके समाज की भाषाओं को भी शामिल किया गया है। इस पहल से बच्चों में विषय के प्रति अभिरुचि और स्पष्टता बढ़ेगी। यह बच्चों के ज्ञानवर्धन के साथ-साथ उनके सर्वांगीण विकास में भी बाजी पलटने वाली साबित होगी। साथ ही वर्ष 2047 तक विकसित भारत बनाने की दिशा में एक कदम आगे बढ़ाने और हमारे देश के उज्ज्वल भविष्य को आकार देने के लिए एक मजबूत नींव रखने की मोदी की गारंटी को पूरा करने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है। ये प्राइमर उन बच्चों के लिए विशेष तौर पर लाभकारी होंगे, जिन्हें ज्ञान अर्जन के क्रम में विभिन्न भाषाओं से गुजरना पड़ता है। शिक्षार्थियों के लिए ये प्राइमर किसी भाषा की वर्णमाला के अक्षरों एवं प्रतीकों का उच्चारण करने, पहचानने और समझने की कुंजी के रूप में कार्य करेंगे। यह बच्चों को इन अक्षरों के एक या अधिक सेटों के संयोजन से बने वाक्यों के अर्थों से भी उनका परिचय कराएंगे।

आमतौर पर बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा की शुरुआत उनकी स्थानीय भाषा से होती है। स्कूल जाने के पश्चात उन्हें अपनी भाषा-बोली अथवा राज्य विशेष की प्रमुख भाषा में पढ़ाई करनी पड़ती है। ऐसे में उन्हें शुरुआत में ही दिक्कत का सामना करना पड़ता है। यदि स्कूल में ही बच्चों को उनकी अपनी मातृभाषा में समझने की सुविधा प्राप्त हो जाए, तो मूल विषयों के प्रति उनकी समझ और बढ़ेगी। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों की पढ़ाई में ये प्राइमर अत्यंत उपयोगी सिद्ध होंगे। प्राइमर शिक्षा क्षेत्र में एक बड़ा परिवर्तनकारी कदम होने जा रहा है। ये मातृभाषा एवं स्थानीय भाषा में शिक्षा तक उनकी पहुंच बनाएंगे। इससे बच्चों में गहरी समझ के साथ-साथ आजीवन सीखते रहने की क्षमता का विकास होगा। स्वदेशी संस्कृति से भी उनका जुड़ाव बढ़ेगा।

प्राइमर तैयार करने के लिए ओडिशा की छह भाषाएं या बोली चुनी गई हैं। इनमें गदबा, जुआंग, कुई, किसान, संताली ओडिया और सौरा शामिल हैं। असम से आठ भाषाओं में प्राइमर बनाए गए हैं, जिनमें असमी, बोडो, देओरी, दिमासा, हमार, कार्बी, मिसिंग और तिवा को स्थान मिला है। मणिपुर की छह भाषाओं अनाल, काबुई (रोंगमई), लियांगमई, मणिपुरी, माओ और तंगखुल को चुना गया है। नगालैंड की पांच भाषाओं अंगामी, एओ, खेजा, लोथा और सुमी में प्राइमर बने हैं। सिक्किम की भूटिया, लेपचा, लिंबू, नेपाली, राई, शेरपा और तमांग समेत सात भाषाओं के लिए प्राइमर बने हैं। आंध्र प्रदेश की जातपा, कोंडा और कोया तो अरुणाचल प्रदेश की मिशमी, नयिशी, तांग्सा और वांचो के अलावा झारखंड की खरिया, कुरुख और मुंडारी के साथ ही कर्नाटक की कोदावा और तुलू में प्राइमर बनाए गए हैं। छत्तीसगढ़ की हल्बी, हिमाचल की किन्नौरी, मध्य प्रदेश की कोकू, महाराष्ट्र की खानदेशी, मेघालय की गारो, मिजोरम की मिजो, त्रिपुरा की मोघ और बंगाल की संताली बांग्ला भाषाओं में प्राइमर तैयार किए गए हैं।

शिक्षा केवल डिग्री प्राप्त करने की व्यवस्था मात्र नहीं है, बल्कि चरित्र निर्माण के साथ-साथ राष्ट्र का निर्माण भी इसका उद्देश्य है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हुआ है। देश में आज भी करीब 17 करोड़ बच्चे सामाजिक, आर्थिक और भाषा संबंधी कई अन्य कारणों से पारंपरिक तरीके से स्कूली शिक्षा हासिल नहीं कर पा रहे हैं। इन्हीं परेशानियों का हल राष्ट्रीय शिक्षा नीति में खोजने का प्रयास किया गया है। प्राइमरों के माध्यम से ज्ञान की राह में भाषा संबंधी कठिनाई दूर करने के लिए शिक्षा मंत्रालय पहले भी ऐसे कई कदम उठा चुका है, जिनकी सहायता से बच्चे शिक्षा और ज्ञान, दोनों अर्जित कर सकते हैं। दृष्टि, वाक् शक्ति या सुनने की शक्ति न रखने वाले बच्चों के लिए सरकार ई-कामिक के रूप में एक पुस्तिका ला चुकी है। प्रिया सुगम्यता नाम की यह पुस्तिका बच्चों के लिए काफी लाभदायक सिद्ध हो रही है।

प्रत्येक सरकार नीति बनाती है, लेकिन सबसे अहम है उसे प्रभावी रूप से धरातल पर उतारना। राष्ट्रीय शिक्षा नीति को स्वीकार करने के बाद उस पर पूर्णतया अमल हो, यह हमारी सरकार की प्राथमिकता है। बच्चों की बुनियादी साक्षरता मजबूत हो, यही हमारा ध्येय है ताकि हम देश के लिए एक सशक्त व विपुल ज्ञान से पूर्ण पीढ़ी तैयार कर सकें।

(लेखक केंद्रीय शिक्षा और कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्री हैं)

response@jagran.com

बेंगलुरु के जल संकट का सबक

पंकज चतुर्वेदी

बेंगलुरु में जल संकट अन्य शहरों को इस तरह की समस्या से बचने के लिए तुरंत चेतने का संदेश दे रहा है

बेंगलुरु में जल संकट को लेकर प्रदर्शन। प्रेट्र

बेंगलुरु जैसे महानगर में उभरा जल संकट चेतावनियों पर समय रहते न चेतने का दुष्परिणाम है। वर्ष 2018 में दक्षिण अफ्रीका के शहर केपटाउन में पानी के भयंकर संकट को देखते हुए दुनिया के जिन 15 शहरों पर 'शून्य जल' स्तर के संकट का खतरा बताया गया था, उनमें भारत के बेंगलुरु का भी नाम था। इस पर ध्यान नहीं दिया गया और इसका ही परिणाम है कि भारत का 'सिलिकन वैली' कहा जाने वाला यह महानगर बीते कुछ दिनों से गंभीर जल संकट से दो-चार है। बेंगलुरु की जरूरत 2600 एमएलडी (मिलियन लीटर डे) है, लेकिन कावेरी नदी से मात्र 460 एमएलडी पानी ही मिल पा रहा है। महानगर के कोई 1200 से अधिक नलकूप सूख चुके हैं। बरसात अभी कम से कम दो महीने दूर है और इसीलिए कई स्कूल-कालेज-दफ्तर बंद कर दिए गए हैं। पानी के दुरुपयोग पर पांच हजार रुपये के जुर्माने सहित कई पाबंदियां लगा दी गई हैं, जैसे कि गाड़ी धोने और पौधों में पानी देने पर रोक लगाने के साथ स्वीमिंग पूल भी बंद कर दिए गए हैं। स्थिति यह है कि अपार्टमेंट में रहने वाले लोग रोज नहा नहीं पा रहे हैं। जलसंकट के कारण आनलाइन फूड आर्डर की मांग बढ़ गई है।

यदि बेंगलुरु महानगर की जलकुंडली बांचें तो यह संकट अस्वाभाविक सा लगता है, क्योंकि यहां तो पग-पग पर जल निधियां हैं। इस जलकुंडली की 'ग्रह दशा' देखने से स्पष्ट होता है कि अंधाधुंध शहरीकरण और उसके लालच में उजाड़ी जा रही पारंपरिक जल निधियों और हरियाली को इसी प्रकार रौंदा जाता रहा तो बेंगलुरु को केपटाउन बनने से कोई नहीं रोक सकता। बेंगलुरु में उपजे जल संकट से देश के अन्य महानगरों और शहरों को भी सबक लेना चाहिए, क्योंकि वे भी अपनी परंपरागत जल निधियों की उपेक्षा कर रहे हैं और जल संचयन अथवा जल पुनर्भरण को लेकर सचेत नहीं हैं। सरकारी रिकार्ड के मुताबिक 90 साल पहले बेंगलुरु में 2789 केरे यानी तालाब हुआ करते थे। वर्ष 1960 तक आते-आते इनकी संख्या घटकर 230 रह गई। वर्ष 1985 में केवल 34 तालाब बचे और अब तो उनकी संख्या 30 तक सिमट गई है। तालाबों और झीलों की उपेक्षा का ही परिणाम है कि न केवल महानगर का मौसम बदल गया है, बल्कि लोग बूंद-बूंद पानी को भी तरस रहे हैं। सेंटर फार कंजर्वेशन एनवायरमेंटल मैनेजमेंट एंड पालिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट ने अपनी रपट में कहा है कि बेंगलुरु में जिन जल निधियों का अस्तित्व बचा है, उनमें से नौ बुरी तरह और 22 बहुत हद तक दूषित हो चुकी हैं। इस महानगर की आधी जनसंख्या को पानी पिलाना टीजीहल्ली तालाब के जिम्मे है। इसकी गहराई 74 फीट है, लेकिन 1990 के बाद से इसमें अरकावति जलग्रहण क्षेत्र से बरसाती पानी की आवक बेहद कम हो गई। अरकावति के आसपास कालोनियों, रिसार्ट्स और कारखानों की बढ़ती संख्या के चलते इसका प्राकृतिक जलग्रहण क्षेत्र चौपट हो चुका है। इस तालाब से 140 एमएलडी पानी हर रोज प्राप्त किया जा सकता है। चूंकि तालाब का जलस्तर घटता जा रहा है, इसलिए बेंगलुरु जल प्रदाय संस्थान को 40 एमएलडी से अधिक पानी नहीं मिल पाता।

बेंगलुरु में पानी के संकट से गुस्साए लोग अब तोड़-फोड़ पर आमादा हैं, परंतु वे यह नहीं देख पा रहे कि उनकी जल गगरी 'टीजीहल्ली' को रीता करने वाले कंक्रीट के जंगल यथावत फल-फूल रहे हैं। बीते दो दशकों के दौरान महानगर के तालाबों में मिट्टी भरकर कालोनी बनाने के साथ-साथ तालाबों में पानी की आवक और निकासी की राह को भी पक्के निर्माणों से रोक दिया गया। बेंगलुरु की पुट्टनहल्ली झील की जल क्षमता 13.25 एकड़ है, जबकि आज उसमें महज पांच एकड़ पानी आ पाता है। बेंगलुरु की अल्सूर झील को बचाने के लिए गठित फाउंडेशन के पदाधिकारी राज्य के आला अफसर हैं। 49.8 हेक्टेयर में फैली इस जलनिधि को बचाने के लिए जनवरी 1999 में इस संस्था ने चार करोड़ की एक योजना बनाने के साथ कई उपाय सुझाए थे, लेकिन कागजी घोड़ों की दौड़ से आगे कुछ नहीं हो पाया।

बेंगलुरु के हैब्बाल तालाब और चेल्ला केरे झील को देवनहल्ली में बन रहे नए इंटरनेशनल एयरपोर्ट तक पहुंचने के लिए बनाए जा रहे एक्सप्रेस हाईवे का ग्रहण लग गया। कर्नाटक गोल्फ क्लब के लिए चेल्लाघट्टा झील को सुखाया गया तो कंटीरवा स्टेडियम के लिए संपंगी झील से पानी निकाला गया। अशोक नगर का फुटबाल स्टेडियम षुल्या तालाब हुआ करता था तो साईं हाकी स्टेडियम के लिए अक्कीतम्मा झील की बलि चढ़ाई गई। मेस्त्री पाल्या झील और सन्नेगुरवन हल्ली तालाब को सुखाकर मैदान बना दिया गया। गंगाशेट्टी और जकरया तालाबों पर कारखाने खड़े हो गए। आगसना तालाब अब गायत्री देवी पार्क बन गया। तुमकूर झील पर मैसूर लैंप की मशीनें हैं। असल में ये झीलें केवल पानी ही नहीं जोड़ती थीं, बगीचों का शहर कहे जाने वाले बेंगलुरु के मौसम के मिजाज को भी नियंत्रित रखती थीं। यदि आज भी सभी तालाबों और झीलों को सहेजना शुरू किया जाए तो बेंगलुरु को फिर से पानी से समृद्ध महानगर बनाया जा सकता है।

बेंगलुरु जिन कारणों से जल संकट से जूझ रहा है, उनसे देश के सभी छोटे-बड़े शहरों को परिचित होना चाहिए, क्योंकि उनमें से अनेक शहर जल संकट की ओर बढ़ रहे हैं और इसकी एक बड़ी वजह पानी के परंपरागत स्रोतों की परवाह न किया जाना है। बेंगलुरु का जल संकट यही कह रहा है कि देश के अन्य शहरों को इस तरह की समस्या से बचने के लिए तुरंत कमर कस लेनी चाहिए। निःसंदेह शहरों का विकास आवश्यक है, लेकिन जल निधियों की कीमत पर नहीं। बेंगलुरु से यह सबक लेना अपरिहार्य हो गया है।

(लेखक पर्यावरण मामलों के जानकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

प्रेम का मर्म

शरीर एवं संपत्ति के साथ वर्षों के सहचर्य के बाद भी यदि उनके प्रति आकर्षण में कमी नहीं आती तो स्वजनों के साथ घनिष्ठता और अपनेपन का भाव होने के बाद उनके प्रति स्नेह और सद्भाव को यथावत रखने में भी कोई परेशानी नहीं हो सकती। बशर्ते हम अपनी अपेक्षा, आग्रह और अहंकार को अपने नियंत्रण में रख सकें। हम दर्पण को घर में इसलिए नहीं रखते कि उस दर्पण से हमें प्रेम है, बल्कि इसलिए रखते हैं कि उसमें हमारा प्रतिबिंब दिखता है। जब तक दर्पण में प्रतिबिंब दिखता रहेगा तभी तक हम उसे घर में रखेंगे। जिस दिन उसमें हमें प्रतिबिंब दिखाई देना बंद हो जाएगा तो उसे अनुपयोगी समझकर हटा देंगे।

दर्पण के भोग जैसा ही वस्तु और व्यक्ति के पीछे हमारा भोग है। वस्तु जब तक उपयोग में आती है और व्यक्ति जब तक हमारे स्वार्थ में सहायक बनता है तभी तक वह हमारे प्रेम का पात्र बना रहता है। जिस दिन इन तत्वों में कमी आएगी, उस दिन न तो घर में वस्तु के लिए स्थान रह जाएगा और न ही व्यक्ति के साथ कोई संबंध। स्पष्ट है कि हमें अपने स्वार्थ के साथ ही मतलब है, वस्तु या व्यक्ति के साथ नहीं। स्वार्थ से उत्पन्न होने वाला प्रेम आकाशीय बिजली की चमक और पानी के बुलबुले जैसा है। उसे शाश्वत मानकर उसे संभालने और बढ़ाने में जीवन के मूल्यवान पलों को नष्ट करना नादानी है।

एक सत्य यह भी है कि वस्तु की ओर से प्रेम की प्रतिक्रिया में द्वेष-भाव प्रकट नहीं होता। जबकि व्यक्ति की ओर से द्वेष उपजने की आशंका रहती है। यही कारण है कि वस्तु के प्रति सहजता से प्रेम उत्पन्न हो जाता है, व्यक्ति के प्रति प्रेम हो भी तो लंबे समय तक टिकता नहीं है। इसके बावजूद, किसी भी वस्तु की खातिर व्यक्ति को कभी नहीं धिक्कारना और व्यक्ति की खातिर वस्तु को छोड़ने में हिचकिचाना नहीं चाहिए। वस्तु की कीमत उसके सम्यक उपभोग में निहित है, संग्रह में नहीं।

डा. निर्मल जैन

आनुवंशिक विविधता का निर्धारण

प्रदीप

भारतीय आबादी के आनुवंशिक इतिहास को समझने से कई बीमारियों के निदान की राह आसान हो सकती है

भारत सरकार द्वारा समन्वित परियोजना 'जीनोम इंडिया' के तहत हाल में यह घोषणा की गई है कि विज्ञानियों ने 10 हजार भारतीय व्यक्तियों के संपूर्ण जीनोम का अनुक्रमण (सीक्वेंसिंग) पूरा कर लिया है। इसी के साथ जीनोमिक्स के क्षेत्र में भारत के प्रवेश की एक ठोस भूमिका तैयार हो गई है, जिससे हमारी आनुवंशिक विविधता का निर्धारण तो होगा ही, साथ में रोग नैदानिकी और उपचार की दिशा में संभावनाओं के नए द्वार भी खुलेंगे। एक कोशिका में मौजूद आनुवंशिक सूचनाओं के पूरे सेट को 'जीनोम' के नाम से जाना जाता है और इसके अध्ययन को जीनोमिक्स कहा जाता है।

वर्ष 1988 में अमेरिकी सरकार ने 'ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट' की शुरुआत की जो 2003 में पूरी हुई। विज्ञानियों ने इस परियोजना के तहत मनुष्य के पूरे जीनोम को पढ़ा। इस परियोजना में अमेरिका के साथ ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, जापान और चीन भी शामिल थे। उस समय भारत इस परियोजना का हिस्सा नहीं था, लेकिन अब 10 हजार व्यक्तियों के संपूर्ण जीनोम का अनुक्रमण पूरा करने के साथ ही भारत भी एक बड़े स्तर पर संपूर्ण मानव जीनोम के अनुक्रमण और संयोजन की क्षमता प्रदर्शित करने वाले देशों की सूची में शामिल हो गया है।

इसके आधार पर कई और तरह की जानकारियां हासिल की जा सकती हैं। लोगों की बीमारियों का पता लगाकर समय रहते उनका इलाज किया जा सकता है, साथ ही भावी पीढ़ी को रोगमुक्त करना संभव होगा। भारत में 4,600 से ज्यादा समूह शामिल हैं, जिनमें से कई में सगोत्र विवाह का प्रचलन है, जो आनुवंशिक विविधता व बीमारी पैदा करने वाले दुर्लभ आनुवंशिक बदलावों में भूमिका निभाते हैं।

जीनोम इंडिया परियोजना के तहत आठ पेटाबाइट का विशाल जीनोम अनुक्रमण डेटाबेस तैयार किया गया है, जिसे भारतीय जैविक डेटा केंद्र, फरीदाबाद में संग्रहित किया जाएगा। इस डेटा की मदद से भारतीय जनसंख्या के आनुवंशिक इतिहास को समझने में मदद मिलेगी और इस विशिष्ट जानकारी की मदद से विज्ञानी और नैदानिक उद्देश्यों की पूर्ति करने की कोशिश की जाएगी। भारत के लिए विशिष्ट आनुवंशिक डेटाबेस महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रारंभिक हृदय गति रुकने से जुड़े एमवाईबीपीसी3 (कार्डियक मायोसिन बाइंडिंग प्रोटीन सी) जैसे दुर्लभ आनुवंशिक वेरिएंट वैश्विक स्तर की तुलना में भारतीय जनसंख्या को अधिक प्रभावित करते हैं। ऐसे आनुवंशिक वेरिएंट्स को समझकर प्रत्येक व्यक्ति की अद्वितीय आनुवंशिक संरचना तथा रोग के बीच संबंध और उनके उपचार खोजने में मदद मिल सकती है। उचित दिशानिर्देश लागू होने के बाद इसे अनुसंधान उद्देश्यों के लिए भी उपलब्ध कराया जाएगा।

(लेखक विज्ञान संचारक हैं)

एक साथ होने चाहिए चुनाव

'एक साथ चुनाव' शीर्षक से प्रकाशित संपादकीय टिप्पणी पढ़कर यह अनुभूति हुई कि देश में एक साथ चुनाव कराना समय की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए केंद्र सरकार ने पूर्व राष्ट्रपति राम नाथ कोविन्द की अध्यक्षता में एक समिति भी गठित की, जिसने अपनी रिपोर्ट भी सौंप दी है। समिति ने व्यापक स्तर पर विचारों का समावेश कर यह रिपोर्ट तैयार की है, लेकिन कुछ राजनीतिक दल रिपोर्ट का अध्ययन किए बिना ही एक साथ चुनाव के विचार को खारिज करने में लगे हैं। जबकि देश में 1952 से 1967 तक लोकसभा चुनाव और विधानसभा चुनाव एक साथ हुआ करते थे, लेकिन 1971 में मध्यावधि चुनाव से यह सिलसिला टूट गया। अब एक बार फिर से एक साथ चुनाव की आवाज उठने लगी है। देश में हर समय चुनाव का मेला लगा रहने से आदर्श आचार संहिता के कारण विकास के काम रफ्तार नहीं पकड़ पाते। सरकारी विभागों के कर्मचारी चुनाव प्रक्रिया में व्यस्त रहते हैं। आमजन को सरकारी विभागों में काम कराने में परेशानी होती है। बार-बार चुनाव से राजनीतिक दलों का व्यय भी अधिक बढ़ता है। एक साथ चुनाव कई समस्याओं का समाधान सिद्ध हो सकते हैं।

raju09023693142@gmail.com

सीएए पर भ्रम की राजनीति

भारत में नागरिकता संशोधन अधिनियम के लागू होने के बाद एक बार फिर से राजनीतिक गुणा-भाग का खेल प्रारंभ हो गया है। तुष्टीकरण की राजनीति करने वाले राजनीतिक दल इस मामले में पूर्व नियोजित राजनीति ही कर रहे हैं। जबकि केंद्र सरकार की ओर से बार बार यह स्पष्ट किया जा रहा है कि नागरिकता संशोधन अधिनियम नागरिकता देने वाला है, यह किसी की नागरिकता को समाप्त नहीं करेगा। इसके विपरीत, केंद्र सरकार के प्रत्येक कदम का विरोध करने वाले राजनीतिक दल इसे भारतीय मुसलमानों के विरोध में उठाया गया कदम बताने का भ्रम पैदा कर रहे हैं। यहां एक बात यह भी स्पष्ट करने वाली है कि इस अधिनियम में भारत के मुसलमान कहीं हैं ही नहीं, फिर इस अधिनियम में मनमाफिक निहितार्थ तलाश करने की राजनीति क्यों की जा रही है। क्या इस प्रकार की राजनीति देश को मजबूत बना सकती है, यकीनन नहीं। क्योंकि जिस देश में कुतर्क की राजनीति की जाती है, वहां भ्रम का वातावरण ही निर्मित होगा। देश के राजनीतिक दलों को चाहिए कि वह स्वच्छ और रचनात्मक राजनीति करके देश को शक्तिशाली बनाने का प्रयास करे। जहां तक भारतीय जनता पार्टी की बात है तो वह अपने एजेंडे से अलग कुछ भी नहीं कर रही है, नागरिकता का मुद्दा उसके लिए पहले से ही प्राथमिकता में रहा है। इतना ही नहीं, अभी तक भाजपा नीत केंद्र सरकार ने जो निर्णय लिए हैं, उन सभी को लेकर ही वह जनता के पास गई और भाजपा को ऐसा करने के लिए ही समर्थन मिला।

नागरिकता संशोधन अधिनियम के तहत यह भी स्पष्ट है कि इसमें बांग्लादेश, पाकिस्तान और अफगानिस्तान के प्रताड़ित अल्पसंख्यक समाज को ही भारत की नागरिकता देने का प्रविधान किया गया है, इसके विपरीत इन देशों में मुसलमान बहुसंख्यक हैं। वे हिंदू सहित अन्य गैर मुस्लिमों को प्रताड़ित करते रहते हैं। इसी प्रताड़ना के कारण वे अपने देश को छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इन प्रताड़ित लोगों को किसी भी मुस्लिम देश में शरण नहीं मिलती है। इसी कारण से भारत सरकार ने यह कदम उठाया है। वहीं इसके विपरीत भारत में तुष्टीकरण की राजनीति करने वाले विपक्ष के अनेक नेता इसका गलत अर्थ निकालकर भारतीय मुसलमानों को भ्रमित करने की राजनीति कर रहे हैं। जबकि इस बात को ये भी भली-भांति जानते हैं कि इस कानून से भारत के मुसलमानों को कोई नुकसान होने वाला ही नहीं है। यहां एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि दुनिया में मुसलमानों को शरण देने वाले कई देश हैं, जबकि प्रताड़ित समाज को शरण देने के लिए कोई भी मुस्लिम देश तैयार नहीं। इसलिए भारत सरकार का यह निर्णय प्रथम दृष्टया उचित ही है।

सुरेश हिंदुस्तानी, ग्वालियर, मध्य प्रदेश

मेलबाक्स

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :

दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।

****

70 लाख से भी अधिक मतदान कर्मियों की आवश्यकता होती है देशभर में चुनाव कार्यों को संपन्न कराने के लिए। इनके अलावा बड़ी संख्या में सुरक्षा बलों की भी आवश्यकता होती है।

आजकल

आम सहमति से संभव एक देश-एक चुनाव

हमारे देश में पूरे वर्ष किसी न किसी राज्य में विधानसभा के अलावा स्थानीय स्तर के चुनावों का आयोजन चलता रहता है। इसके समाधान हेतु 'एक देश, एक चुनाव' की संभावनाओं को टटोलने के लिए पूर्व राष्ट्रपति राम नाथ कोविन्द की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंप दी है। अधिकांश दलों ने इसके प्रति अपनी सहमति जताई है, परंतु जो दल असहमत हैं, उनकी चिंताओं को समझते हुए इस दिशा में आम सहमति कायम की जा सकती है

पूरे देश में हर स्तर के चुनाव एक साथ होने से संसाधनों की होगी बचत। प्रतीकात्मक

विजय कपूर
वरिष्ठ पत्रकार

'एक देश, एक चुनाव' से संबंधित पूर्व राष्ट्रपति राम नाथ कोविन्द के नेतृत्व वाली उच्चस्तरीय समिति ने अपनी 18 हजार से अधिक पृष्ठों वाली रिपोर्ट राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मु को सौंप दी है। इस समिति को सरकार के प्रत्येक स्तर के चुनाव एक साथ कराने की संभावना तलाशने की जिम्मेदारी दी गई थी, जिस पर उसने कहा है कि इस व्यवस्था को साल 2029 तक अपनाया जा सकता है। लोकसभा एवं विधानसभाओं के चुनाव साथ कराने में कोई खास चुनौती सामने नहीं आने जा रही है, क्योंकि उचित संवैधानिक संशोधन को राज्य विधानसभाओं से अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी। लेकिन स्थानीय निकाय चुनावों एवं मतदाता सूचियों को भी साथ मिलाने में कम से कम आधी विधानसभाओं की अनुमति जरूरी होगी। पैनल ने थ्री-टियर चुनाव साथ कराने की संस्तुति करते हुए कहा है कि लोकसभा एवं विधानसभाओं के चुनाव साथ कराने के सौ दिनों के भीतर स्थानीय निकायों के चुनाव कराए जा सकते हैं।

विपक्ष की अधिकतर पार्टियों ने इस रिपोर्ट का विरोध किया है और कहा है कि 'एक देश, एक चुनाव' का उद्देश्य संविधान को पूरी तरह से खत्म कर देना है। उनके अनुसार, यह प्रस्ताव 'बुनियादी चुनावी सिद्धांतों' और भारतीय संविधान के संघीय ढांचे के विरुद्ध है। शिव सेना (यू) के नेता उद्धव ठाकरे ने कहा है कि यह प्रस्ताव 'तानाशाही की ओर उठाया गया कदम है।' कांग्रेस, तृणमूल, आप और माकपा ने भी इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया है। बसपा ने खुलकर तो प्रस्ताव का विरोध नहीं किया है, लेकिन कुछ चिंताएं अवश्य व्यक्त की हैं। वहीं सपा का कहना है कि अगर एक साथ चुनाव कराए गए तो राज्य-स्तर की पार्टियां चुनावी योजना व खर्च में राष्ट्रीय पार्टियों का मुकाबला नहीं कर पाएंगी, जिससे दोनों प्रकार की पार्टियों में मतभेद बढ़ जाएंगे।

बहरहाल, इस विषय पर विधि आयोग भी जल्द अपनी रिपोर्ट देगा। हालांकि विधि आयोग अपनी पिछली रिपोर्टों में एक साथ चुनाव कराने के पक्ष में नहीं रहा है, जो उसके नजदीक अव्यवहारिक व गैर जरूरी हैं, लेकिन अब सूत्रों का कहना है कि वह सरकार के तीनों टियर- लोकसभा, राज्य विधानसभाओं व स्थानीय निकायों जैसे नगर पालिकाओं व पंचायतों- के चुनाव 2029 से साथ कराने की संस्तुति करेगा और यह भी कि यदि त्रिशंकु सदन की स्थिति पैदा होती है या अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता है तो साझी सरकार का प्रविधान हो। वैसे कोविन्द पैनल ने साथ चुनाव कराने की कोई समय अवधि नहीं दी है। लोकसभा एवं विधानसभाओं के चुनाव साथ कराने के संदर्भ में पैनल ने सुझाव दिया है कि आम चुनाव के बाद जब लोकसभा की पहली बैठक हो तो राष्ट्रपति उसे 'नियुक्त तिथि' के तौर पर नोटिफाई करें और इस तिथि के बाद जो राज्य विधानसभाओं का गठन हो वह लोकसभा के पूर्ण कार्यकाल पर केवल इस तिथि तक के लिए ही हो।

वैसे स्वतंत्रता के बाद देश में एक साथ चुनाव कराने का सिलसिला आरंभ हुआ था, जो लगभग 1967 तक चला और फिर गाड़ी पटरी से उतर गई। समिति ने एक साथ चुनाव कराने के जो तर्क दिए हैं, उन्हें भी समझना आवश्यक है। एक लोकसभा चुनाव में लगभग 70 लाख चुनाव कर्मचारियों को चुनावी ड्यूटी में शामिल होना पड़ता है। स्कूल पोलिंग बूथ के तौर पर प्रयोग किए जाते हैं और अर्द्धसैनिक बलों को तैनात करना पड़ता है। छोटे स्तर पर यही प्रक्रिया विधानसभा चुनावों के लिए दोहरानी पड़ती है। साथ चुनाव कराने से संसाधनों का अधिक प्रभावी उपयोग किया जा सकेगा।

अधूरा कार्यकाल : कोई राज्य सरकार यदि अपने पांच वर्षों का कार्यकाल पूरा करने से पहले गिर जाती है तो पैनल ने दो सुझाव दिए हैं। एक, बिना ताजा चुनाव कराए नई सरकार गठित कर दी जाए, जिसका कार्यकाल 'एक देश, एक चुनाव' के अगले चक्र तक हो। दूसरा यह कि कोई सरकार नहीं बनाई जाए। इसका अर्थ होगा फिर से चुनाव या केंद्र का शासन। रिपोर्ट में कहा गया है कि इनमें से क्या होना चाहिए, यह चुनाव आयोग को तय करना है। लेकिन हर सूरत में चुनाव एक साथ ही होंगे। रिपोर्ट में कहा गया है कि 'बहुलवादी चुनावी प्रणाली ऐसी व्यवस्था है, जिसमें कभी कभी स्थायी बहुमत नहीं मिल पाता है।' यह त्रिशंकु सदन के संदर्भ में कहा गया है। लेकिन इस बिंदु पर रिपोर्ट में आगे कुछ नहीं कहा गया है, जबकि एक साथ चुनाव कराने का सिलसिला मुख्यतः इसी कारण से टूटा था।

एक साथ चुनाव कराने के जो अन्य तर्क दिए गए हैं, उनमें से भी अधिकतर को समझ पाना मुश्किल है। मसलन, कहा गया है कि एक साथ चुनाव कराने से पहचान की राजनीति को नियंत्रित किया जा सकेगा। क्या ऐसा संभव है? आरक्षण के लिए आंदोलन या किसानों के धरने हमेशा निकटस्थ चुनाव की रणनीति से जुड़े नहीं होते हैं। बड़ी समस्या यह है कि इस मुद्दे पर सभी दल एक मत नहीं दिख रहे हैं। समिति को लगभग 47 दलों ने अपनी राय दी थी। इनमें से 15 दलों ने एक साथ चुनाव कराए जाने के विचार का विरोध किया है।

यहां उल्लेखनीय यह भी है कि भारत की राजनीतिक यात्रा में जीएसटी एक ऐसा विषय है, जब राज्यों ने व्यापक उद्देश्य के लिए एकतरफा कर लगाने के अपने अधिकार को अपनी इच्छा से त्याग दिया था। यह समर्थन पाने के लिए दो केंद्रीय सरकारों को वर्षों तक काम करना पड़ा था। लोकतंत्र में समझा-बुझाकर मनाना एक अनोखा गुण होता है। एक साथ चुनाव कराने की समस्या का समाधान भी तभी संभव है, जब सरकार अगला कदम उठाने से पहले सभी राजनीतिक साझेदारों का समर्थन व साथ प्राप्त करने का प्रयास करे। **(ईआरसी)**

वर्ष 2029 में संयुक्त चुनाव कराने की तैयारी

प्रमोद भार्गव
वरिष्ठ पत्रकार

वर्ष 2029 में 'एक देश, एक चुनाव' यानी देश में लोकसभा और विधानसभा चुनावों के साथ निकाय एवं पंचायत चुनाव भी एक साथ कराने की दिशा में केंद्र सरकार एक कदम आगे बढ़ गई है। अब इस रिपोर्ट में सुझाई गई संस्तुतियों को विधेयक के रूप में संसद के दोनों सदनों से पारित कराने का काम केंद्र सरकार का है। ऐसी संभावना है कि इन संस्तुतियों को कानूनी रूप देने के बाद अगले आम चुनाव में एक साथ चुनाव कराने का सिलसिला शुरू हो जाए। उस समय जिन राज्य सरकारों का कार्यकाल बचा होगा, वह लोकसभा चुनाव तक ही पूरा मान लिया जाएगा। अनुच्छेद 324ए में संशोधन करते हुए निगमों और पंचायतों के चुनाव भी लोकसभा चुनाव के साथ कराए जा सकते हैं। वस्तुतः संविधान के अनुच्छेद 368ए के तहत इस संशोधन विधेयक को आधे राज्यों से भी पास करना जरूरी होगा। इसी अनुरूप केंद्र शासित प्रदेशों के लिए भी अलग से संविधान संशोधन की आवश्यकता पड़ेगी।

चूंकि संविधान के अनुसार, केंद्र और राज्य सरकारें अलग-अलग इकाइयां हैं। इस परिप्रेक्ष्य में संविधान में समानांतर, किंतु भिन्न-भिन्न अनुच्छेद हैं। इनमें उल्लेख है कि इनके चुनाव प्रत्येक पांच वर्ष के भीतर होने चाहिए। लोकसभा या विधानसभा जिस दिन से गठित होती है, उसी दिन से पांच साल के कार्यकाल की गिनती शुरू हो जाती है। संविधान विशेषज्ञों का मानना है कि एक साथ चुनाव के लिए 18 अनुच्छेदों में संशोधन करना होगा। विधि आयोग, निर्वाचन आयोग, नीति आयोग और संविधान समीक्षा आयोग तक इस मुद्दे के पक्ष में अपनी राय दे चुके हैं। ये सभी संवैधानिक संस्थाएं हैं। यदि विपक्षी दल सहमत हो जाते हैं तो दो तिहाई बहुमत से होने वाले ये संशोधन कठिन कार्य नहीं हैं। जैसा कि लग रहा है, वर्ष 2024 में मोदी सरकार की लगभग फिर से सत्ता में बहाली हो रही है, फिर 2029 के चुनाव एक साथ ही होंगे।

एक साथ चुनाव के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि देश प्रत्येक कुछ माह बाद चुनावी मोड में आ जाता है, लिहाजा सरकारों को नीतिगत निर्णय लेने में अड़चनें आती ही हैं, नीतियों को कानूनी रूप में देने में विलंब भी होता है। यह तर्क जगह जायज है। वैसे भी राजनीतिक दलों की महत्ता तभी है, जब वे नीतिगत निर्णयों को अधिकतम लोकतांत्रिक बनाने के लिए अपने सुझाव दें व उन्हें विधेयक के प्रारूप का हिस्सा बनाने के लिए नैतिक दबाव बनाएं। कुछ विपक्षी दल एक साथ चुनाव के पक्ष में शायद इसलिए नहीं हैं, क्योंकि उन्हें आशंका है कि ऐसा होने पर जिस दल ने अपने पक्ष में वातावरण बना लिया तो केंद्र व ज्यादातर राज्य सरकारें उसी दल की होंगी? जैसे कि 17वीं (2019) लोकसभा के चुनाव में भाजपा नेतृत्व वाले राजग को बड़ा जनादेश मिला। ऐसे में यदि विधानसभाओं के भी चुनाव हुए होते तो कांग्रेस समेत क्षेत्रीय दलों का भी सूपड़ा साफ हो गया होता? जबकि ऐसा हुआ नहीं। उस समय लोकसभा चुनाव के साथ ओडिशा, आंध्र प्रदेश, सिक्किम, तेलंगाना और अरुणाचल प्रदेश में भी चुनाव हुए थे, जिनके परिणामों में भिन्नता देखने में आई है। लिहाजा यह दलील बेबुनियाद है कि एक साथ चुनाव में क्षेत्रीय दलों को नुकसान होगा।

वस्तुतः बार-बार चुनाव की स्थितियां निर्मित होने के कारण सत्ताधारी दल को यह भय भी बना रहता है कि उसका कोई नीतिगत निर्णय ऐसा न हो जाए कि उसके समर्थक मतदाता नाराज हो जाएं। लिहाजा सरकारों को लोक-लुभावन फैसले लेने पड़ते हैं। यदि एक साथ चुनाव की प्रक्रिया वर्ष 2029 से शुरू हो जाती है तो केंद्र व राज्य सरकारें बिना किसी दबाव के देश व लोकहित में फैसले ले सकेंगी। सरकारों को पूरे पांच साल विकास एवं सुशासन को सुचारु रूप से लागू करने का अवसर मिलेगा।

खरी-खरी

हम विकास करेंगे!

पूरन सरमा

चुनाव का मौसम आ गया है। नेताओं की आवाजाही बढ़ गई है। जिस चुनाव प्रत्याशी से पूछो कि चुनाव जीत गए तो क्या करोगे भाई? सभी का एक ही उत्तर होता है- विकास करेंगे। मैं पूछता हूं- विकास क्या होता है, तो वे इस बात पर दाएं-बाएं झांकते हैं। मैं कहता हूं कि चलो कोई बात नहीं, आप विकास का मतलब नहीं जानते, लेकिन यह तो जानते ही होंगे कि विकास करेंगे कैसे? इस पर वे मुझे अज्ञानी समझ कर हंसते हैं और कहते हैं कि यह भी कोई पूछने की बात है, आजादी के बाद से जैसे विकास हो रहा है, वैसे ही करेंगे। मैं कहता हूं कि आजादी के बाद वाले विकास में तो घोटाले होते रहे हैं तो उनका कहना है कि तो क्या हुआ, उनकी जांच करवाएंगे। दोषियों को दंडित करेंगे, लेकिन हम विकास का काम अधूरा नहीं छोड़ेंगे। मैंने अपने बेटे विकास को भी चुनाव में उतार दिया है। देखता हूं विकास कैसे नहीं होता है?

मैंने नेताजी से कहा भी कि यह तो वंशवाद है। नेताजी ने समझाया कि यही विकास है। विकास ऐसे ही होता है। विकास एक अबाध परंपरा है, जिसमें कड़ी से कड़ी जुड़ी हुई है। इसी कड़ी की लड़ी से विकास साकार होगा तथा आकार लेगा।

मैंने कहा, 'इसका मतलब गरीबी, मंहगाई और बेकारी से भी मुक्ति मिलेगी?' नेताजी ने कहा, 'अब कहीं आपने दो टूक बात। इन्हीं से तो हम लड़ रहे हैं। हम चुनाव इसलिए लड़ते हैं, ताकि इनको समाप्त किया जा सके। मान लीजिए मैंने चुनाव में नियमानुसार 70 लाख रुपये खर्च किए तो मैं पांच वर्ष में इनके तीन या चार बिंदी लगाकर विकास ही तो करूंगा।'

मैंने नेताजी से कहा, 'मैं आपका आशय समझा नहीं,' तो वे बोले, 'तुम यह मसला समझो ही नहीं तो मेरे हित में है। मैंने मोटी सी बात आपको समझाई कि भाई हम विकास करेंगे, लेकिन तुम नहीं समझो तो मैं क्या करूं?' मैंने कहा भी कि इस 'हम विकास करेंगे' का मतलब सारे नेता मिलकर अपना घर भरेंगे, यह तो नहीं है। मेरी इस बात पर वे खिल-खिलाकर हंसे और बोले 'बात तो समझते हो, लेकिन मर्म देर से समझ में आता है।' यह कहकर नेताजी चले गए और मैं घंटों सोचता रहा।

पोस्ट

यह भी एक सच है कि यदि चुनावी बांड न होते तो इतनी डिटेल में कभी पता भी नहीं चल पाता कि किस कंपनी ने किस दल को कब-कब क्या दिया है।
मानक गुप्ता@manakgupta

विपक्षी दलों को इसलिए दुखी नहीं होना चहिए कि भाजपा को ज्यादा चंदा मिल गया। उन्हें दुखी इस बात पर होना चहिए कि मात्र एक राज्य में सरकार चलाने वालीं ममता दीदी उनसे ज्यादा चंदा ले गई।
अतुल कुमार राय@AuthorAtul

कांग्रेस और बाकी विपक्षी दल अगर चुनावी बांड योजना को इतना ही अनैतिक मानते हैं तो उन्हें समस्त चंदा सार्वजनिक करके पूरा पैसा वापस कर देना चाहिए। यह तो वही बात हो गई कि ईवीएम पर भरोसा नहीं, लेकिन तब तक ही जब तक कि विपक्षी दल किसी राज्य में जीत नहीं जाता।
द सोशल साइंटिस्ट@socially321

मोदी जी ने आठ भाषाओं में अपना इंटरनेट मीडिया हैंडल बनाया है। उनके भाषण इन भाषाओं में एआइ से अनूदित होंगे। इसके पहले सार्वजनिक कार्यक्रमों में मोदी जी एआइ की सहायता से तमिल भाषियों से संवाद कर चुके हैं। उधर विपक्ष चंदा-चंदा खेल रहा है, उधर मोदी जी प्रचार अभियान के अगले स्तर पर पहुंच गए हैं।
रंगनाथ सिंह@rangnathsingh_

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या नकली दवा बनाने-बेचने वाले बेलगाम होते जा रहे हैं?

सभी आंकड़े प्रतिशत में।

आज का सवाल
क्या चुनावी बांड के रूप में विपक्ष को एक बड़ा मुद्दा हाथ लग गया है?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।

जनपथ

डंका बजने जा रहा हो जाओ तैयार,
रोज भिगोएगी हमें वादों की बौछार।
वादों की बौछार समझदारी दिखलाना,
सुनकर मीठे बोल नहीं झांसे में आना।
जिसे न भाता राष्ट्र फूंकिए उसकी लंका,
इसीलिए तो आज जा रहा बजने डंका!
- ओमप्रकाश तिवारी

बिहार डायरी

बेरोजगारी से रोजगार तलाशने की होड़

आलोक मिश्रा
स्थानीय संपादक, बिहार

बेरोजगारी इस समय देश में चर्चा का विषय है। केंद्र सरकार इसे नौकरी के बजाए रोजगार से जोड़ कर देखती है तो राहुल गांधी नौकरी देने की बात करते हैं। भले ही देश की चुनावी राजनीति में यह विमर्श का मुद्दा न बन पा रहा हो, लेकिन बिहार में चर्चा का विषय बन गया है। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और कुछ समय पहले तक उनके साथ रहे पूर्व उप मुख्यमंत्री तेजस्वी यादव, दोनों में अब तक बंटी नौकरियों पर अपना श्रेय लेने की होड़ मची है। पटना की सड़कें दोनों के संदेशों से पटी हैं। होर्डिंग-पोस्टरों के जरिये बताने की कोशिश चस्पा है कि कौन उनका हितचिंतक है? यानी जाति की राजनीति के लिए जाने जाने वाले बिहार में इस समय बेरोजगारी में दोनों ही राजनीतिज्ञ अपने लिए रोजगार तलाश रहे हैं।

बेरोजगारी देश में एक बड़ा मुद्दा है। सभी सरकारें इसे दूर करने का आश्वासन देती हैं। चुनाव में अधिकांश राजनीतिक दलों के घोषणा पत्र में इसे दूर करने का वादा किया जाता है लेकिन यह भी सही है कि बदलते आर्थिक व सामाजिक परिवेश में सभी को नौकरी मुश्किल है। इसलिए मोदी सरकार नौकरी के बजाए इसे रोजगार से जोड़ कर देखती है। उसने कई ऐसी योजनाएं चलाई हैं जिसमें युवाओं के लिए रोजगार की संभावनाएं हैं। बिहार की परिस्थिति अन्य राज्यों से भिन्न है। यहां का युवा नौकरी पर ही अधिक निर्भर रहता है। इसी को भांप कर 2020 के विधानसभा चुनाव में युवा राजद नेता सह पूर्व उप मुख्यमंत्री तेजस्वी यादव ने युवा वोटरों को लुभाने के लिए अपनी सरकार आने पर दस लाख नौकरियां देने का वादा किया था। तेजस्वी भी युवा हैं, इसलिए युवाओं को उनकी बात भा गई। युवाओं ने उन्हें बढ़िया समर्थन दिया और उनकी पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। भले कुछ सीटों से पीछे रहने के कारण उनकी सरकार नहीं बन पाई, लेकिन सशक्त विपक्ष के रूप में जरूर उभरी।

पटना में गुरुवार को नवनियुक्त आयुष चिकित्सक को नियुक्ति पत्र देते नीतीश कुमार। जागरण आर्काइव

समय पलटा और जदयू व भाजपा का गठबंधन टूटा। नीतीश कुमार की जदयू और लालू यादव के राजद ने मिलकर सरकार बना ली। उसके बाद शुरू हुआ नौकरी देने का सिलसिला। लगभग साढ़े तीन लाख नौकरियां इस सरकार के कार्यकाल में दी गईं। उसके बाद लगभग 17 महीने में ही फिर नीतीश कुमार का राजद से मोहभंग हो गया। गठबंधन टूट गया और नीतीश कुमार ने भाजपा संग मिलकर सरकार बना ली। नई सरकार में भी नौकरियां बंटने लगीं। 72 दिनों में 1.27 लाख नौकरियां दी गईं। लेकिन तेजस्वी भला कहां चुप बैठने वाले। उन्होंने यह प्रचारित करना शुरू कर दिया कि नौकरी देने में उनकी भूमिका है। उनके ही दबाव में नीतीश कुमार को यह करना पड़ा। वे याद दिला रहे हैं कि जब चुनाव में उन्होंने दस लाख नौकरी का वादा किया था, तब कहा जाता था कि नौकरी है कहां, वेतन कहां से आएगा? जब वे सरकार में थे तो दबाव बनाया और तब रिक्त पद निकलने लगे। नीतीश कुमार ने भी तेजस्वी संग मंच साझा करते हुए दस लाख नौकरी देने का वादा किया था।

इस समय दी जा रही नौकरियों को लेकर दोनों में होड़ मची है। नीतीश कुमार का कहना है कि सबकुछ उनके चाहने पर हुआ है, तेजस्वी की कोई भूमिका इसमें नहीं है। सरकारी नौकरी मतलब नीतीश कुमार के पोस्टर पूरे पटना में छाए पड़े हैं। जबकि तेजस्वी हर सभा में 17 साल बनाम 17 महीने का नारा दे रहे हैं। वे इसका श्रेय स्वयं को देते हैं। युवाओं के बीच प्रचारित कर रहे हैं कि उनकी समस्या वही हल कर सकते हैं। उनकी भी तमाम होर्डिंग्स लगी हैं। वीडियो संदेश प्रसारित हो रहे हैं, जिनमें उनके कार्यकाल के दौरान नौकरी देने का मामला हो या जातिगत जनगणना कराने का, वे श्रेय स्वयं को देते हैं। इस लोकसभा चुनाव में लगता है कि यह मुद्दा काफी मुखर होगा। तेजस्वी इसे मरने नहीं देने वाले और नीतीश इसकी काट करने से पीछे नहीं हटने वाले।

बेरोजगारी वाकई बिहार के लिए बड़ा मुद्दा है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2016-2017 से अप्रैल 2023 तक 22 लाख से ज्यादा युवा रोजगार कार्यालय में पंजीकृत हो चुके हैं, जबकि उसके अनुपात में 20-25 प्रतिशत को भी नौकरी नहीं मिली है। देखना दिलचस्प होगा कि तमाम आरोप-प्रत्यारोपों की भीड़ में युवा इस मुद्दे पर सहमत होंगे या वे भी भेड़ चाल चलेंगे।

मंथन

बढ़ती आबादी पर अंकुश

जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करके ही संसाधनों एवं संभावनाओं से परिपूर्ण भारत 2047 तक विकसित राष्ट्र के अपने सपने को साकार करने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ सकेगा

डा. धर्मेंद्र प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्र की स्वतंत्रता के पश्चात सरकार ने जब पहली बार आमजन को 'परिवार नियोजन' शब्द से परिचित कराया, तब कई लोगों ने यह टिप्पणी की थी कि क्या अब यह भी सरकार बताएगी कि बच्चे कितने पैदा करने हैं! तब से लेकर आज तक सरकार द्वारा परिवार नियोजन संबंधी अनेक पहल की जा चुकी हैं। लेकिन उच्चतम न्यायालय के हाल ही के एक ऐतिहासिक निर्णय से यह मुद्दा एक बार फिर से सार्वजनिक बहसों में जीवित हो उठा है।

वस्तुतः अक्टूबर 2022 के राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम रखते हुए राजस्थान सरकार के सरकारी नौकरी हेतु दो बच्चों के नियम पर मुहर लगाते हुए उच्चतम न्यायालय ने अपने आदेश में कहा है कि 'राजस्थान पुलिस अधीनस्थ सेवा नियम 1989 का नियम 24 (4) गैर-भेदभावपूर्ण है और संविधान का उल्लंघन नहीं करता है। यह संविधान के दायरे से बाहर है, क्योंकि प्रविधान के पीछे का उद्देश्य परिवार नियोजन को बढ़ावा देना है। राजस्थान सरकार का नियम नीति के दायरे में आता है, अतः इसमें हस्तक्षेप की कोई जरूरत नहीं है।'

इसका अर्थ हुआ कि राजस्थान सरकार का यह कानून अब पूर्णतः स्थापित हो चुका है, जिसके अनुसार दो से अधिक बच्चे होने की दशा में सरकारी नौकरी देने से इन्कार करना कोई भेदभावपूर्ण नहीं है और राजस्थान में दो से अधिक बच्चों वाले लोग सरकारी नौकरियां नहीं कर सकेंगे। उच्चतम न्यायालय का यह निर्णय न केवल सकारात्मक है, बल्कि सामाजिक समानता और न्याय को प्रोत्साहित करता हुआ विकसित भारत के निर्माण में परिवार नियोजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करता है। यह निर्णय उन सभी लोगों के लिए है जो अपने परिवार की आर्थिक स्थिति एवं अन्य आवश्यकताओं के संबंध में समझदारी से निर्णय लेना चाहते हैं।

वस्तुतः ऐसा नियम बनाने वाला राजस्थान देश का पहला राज्य नहीं है। अन्य कई राज्यों में ऐसी नीतियां पहले से ही लागू हैं। मध्य प्रदेश में 2001 से सिविल सेवा (जनरल कंडिशन आफ सर्विसेज) लागू है। तेलंगाना पंचायत राज अधिनियम की कई धाराओं के तहत दो से अधिक बच्चों वाले व्यक्ति को चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित किया गया है। आंध्र प्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1994 में भी यही धाराएं लागू हैं। वर्ष 2005 के गुजरात सरकार के लोकल अथारिटीज एक्ट के संशोधन के अनुसार, दो से अधिक बच्चों वाले व्यक्ति स्थानीय निकायों के लिए चुनाव नहीं लड़ सकते। उत्तराखंड सरकार ने दो से अधिक बच्चों वाले लोगों को पंचायत चुनाव लड़ने से रोकने का निर्णय किया था। महाराष्ट्र जिला परिषद और पंचायत समिति अधिनियम उन लोगों को स्थानीय निकाय चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित करती है जिनके दो से अधिक बच्चे हैं। हरियाणा के पंचायत चुनाव में भी ऐसे ही नियम लागू हैं।

जनसंख्या नियंत्रण के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर खूब विमर्श होते रहे हैं। इस मामले में भारत की तुलना चीन से की जाने लगती है। इसका एक कारण तो शायद यह हो सकता है कि पिछली सदी के आठवें दशक में भारत में जब परिवार नियोजन कार्यक्रम शुरू हुए, तो उसी के आसपास चीन ने दो बच्चों की नीति को अपने यहां लागू कर दिया था। लेकिन भारत में यह संकल्प दोहराया जाता रहा है कि जनसंख्या नियंत्रण हेतु भारत को चीन जैसी कठोर नीति बनाने की आवश्यकता नहीं है। यह ठीक है कि पिछली सदी के आठवें-नौवें दशक में दुनिया के ये दो बड़े देश जनसंख्या नियंत्रण की ओर बढ़ रहे थे, लेकिन यह भी सच है कि क्षेत्रफल की दृष्टि से चीन भारत से सवा तीन गुना से भी ज्यादा बड़ा देश है। भारत का जनसंख्या घनत्व भी चीन से बहुत अधिक है। गैर-बराबरी के ऐसे अनेक तथ्यों के होने के कारण भारत और चीन के जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों के सूत्र या प्रतिमान एक जैसे नहीं हो सकते।

जनसंख्या वृद्धि की गति को रोकने से ही कम हो सकता है देश के संसाधनों पर बढ़ता बोझ। फाइल

भारत में अभी लगभग ढाई करोड़ लोगों का हर साल जन्म होता है और लगभग 90 लाख लोगों की मृत्यु होती है। यानी देश की वार्षिक औसत जनसंख्या वृद्धि डेढ़ करोड़ के बीच होनी चाहिए, लेकिन वास्तविकता इससे अलग है। धीरे-धीरे बढ़ता जनसंख्या का यह असंतुलन आज भारत के लिए समस्या बनता जा रहा है, जिसके समाधान स्वरूप भारत में परिवार नियोजन को कुछ दशक के लिए लागू करने की बात प्रमुखता से उठाई जाती है। समय रहते यदि ऐसा नहीं किया गया तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मांग और आपूर्ति का संतुलन बिगड़ेगा एवं संसाधनों के अनुरूप आबादी के आधिक्य से संसाधनों पर बोझ बढ़ता जाएगा। ऐसे में सरकारी नौकरियों में अधिकतम दो बच्चों का नियम नीतिगत एवं सामाजिक स्तर पर एक बड़ा संदेश देने की जरूरी कोशिश प्रतीत होता है। इस प्रकार के विषयों पर सामान्यतः विभिन्न समुदायों के बीच असहमति होती है। कुछ लोग इसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन कहते हैं, जबकि कुछ इसे सामाजिक समानता और आर्थिक प्रगति हेतु आवश्यक मानते हैं। यह भी सच है कि कोई भी समाज जैसे-जैसे साक्षर होता जाएगा, परिवार नियोजन जैसी बातें सहजता से स्व-नियमन का हिस्सा बनती जाएंगी।

****